भारतेन्दु के नाट्य साहित्य में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति

* प्रेम सिंह मीणा

भारतेन्दु युग जन जागरण का एक विशिष्ट दौर है क्योंकि यह आंदोलन जागरण न केवल सामंती ढांचे और समाज में व्याप्त कुरीतियों और धार्मिक आडंबरों के विरूद्ध है बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी भी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्वरूप को भलिभांति समझते थे। इसीलिए उन्होंने अपने नाट्य साहित्य में अपनी भाषा संस्कृति, धर्म के प्रति निष्ठा और भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरवगान किया है तो दूसरी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दुराचारी नीतियों, अन्याय, अत्याचार, शोषण भ्रष्ट शासन तथा वर्तमान के प्रति क्षोभ भी व्यक्त किया है। भारतेन्दु ने यद्यपि भारत की स्वाधीनता की स्पष्ट मांग नहीं की है और कहीं कही उनकी रचनाओं में राज भक्ति की भावना भी विद्यमान है तथापि वे सच्चे देश भक्त थे। उन्हें भी अन्य शिक्षित भारतीयों एवं आरंभिक राष्ट्रवादी नेताओं के भांति अंग्रेजों की उदारता, उनके प्रशासन और न्याय बुद्धि पर विश्वास था। जहां एक ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ''पूरी अमी की कटोरियां सी चिरजीओं सदा विक्टोरियां रानी'' कहकर ब्रिटिश साम्राज्ञी की प्रशंसा कर चुके थे तो दूसरी ओर १८८६ ई. में दादाभाई नौरोजी जैसे राष्ट्रवादी नेता भी कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में न केवल अंग्रेजी राज्य के लाभों का सविस्तार वर्णन कर रहे थे अपितु महारानी विक्टोरियां की जय ध्वनि के साथ उनकी दीर्घायु की कामना भी कर रहे थे। भारतेन्दु समकालीन उदारवादी नेताओं के समान ही सच्चे देश भक्त थे। वे शीघ्र ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मूल स्वरूप समझ गये थे। अत: उनका निष्क्रिय असंतोष क्रियाशील साहित्यिक आंदोलन में परिवर्तित हो गया। उस दौर में अंग्रेज सरकार का विरोध निश्चित सीमाओं में रहकर ही किया जा सकता था। इसलिए उन्होंने राज भक्ति की आड़ में ब्रिटिश राज के शोषण का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया। प्रांतीयता अथवा क्षेत्रियता के मोह में वे कभी नहीं पड़ते वरन सम्पूर्ण भारत वर्ष के गौरव और उसकी दुर्दशा पर हर्ष अथवा शोक व्यक्त करते है। भारतेन्दु का 'भारत दुर्दशा' नाटक इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी राज्य की कटु आलोचना की गई हे तथा भारतवासियों की अशिक्षा आलस्य, काहिली आदि का भी यथार्थ चित्रण किया गया है। भारतेन्दु को चिंता है कि राजसत्ता ने जनता को निर्धन, अशिक्षित और अपाहितज बनाकर सब उम्मीदों पर पानी फेर दिया हे। वे कहते हैं-

अब जहां देखहुं तहं दु:खहि दु:ख दिखाई।/हा हा। भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

भारत को जगाने की भरसक कोशिश करने के बावजूद भी भारत भाग्य को कटार भोंककर मरना पड़ता है क्योंकि उसे ईश्वर और भगवती राज राजेश्वरी पर भी पूर्ण विश्वास नहीं है कि वे भारत का उद्धार कर सकते है। डॉ. राम विलास शर्मा इस संदर्भ में अपनी पुस्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नव जागरण की समस्याएं में लिखते है कि भारत दुर्दशा के इस निराशापूर्ण अंत ही में जबरदस्त आशा छिपी हुई है। एकता और संघर्ष के रास्ते पर जनता बढ़े इसके लिए जरूरी था कि इस सत्य का साक्षात्कार हो जाए कि भगतवी राजराजेश्वरी सोते हुए भारत का हाथ पकड़कर उठाने वाली नहीं है। बल्कि भारतवासियों को स्वयं ही अपने पुरूषार्थ से भारत का उद्धार करना होगा। भारत को अपनी दुखस्था से मुक्त होना है तो पहले उन्हें अपनी दुर्बलताओं से मुक्त होना होगा। भारतेन्दु के समय तक ब्रिटिश भारत की आर्थिक दशा डांवाडोल हो चुकी थी । विभिन्न माध्यमों से हिन्दुस्तान के धन की बटोर कर ब्रिटेन भेजा जा रहा था और उसके बदले भारत को पर्याप्त लाभ नहीं मिल रहा था। इस संदर्भ में रजनी पाम दत्त ने अपनी पुस्तक इंडिया टुडे (हिन्दी अनुवाद - आज का भारत) में कहा है कि देश का सारा धन विदेश जाता रहा। दीर्घकाल तक होने वाले युद्धों का व्यय भार भी भारत को उठाना पड़ा। विदेशी सरकार की अनीति तथा शोषण ने भारतीय जनता को पूर्णरूपेण खोखला कर दिया था। अंग्रेजों की लूट का जो सिलसिला जारी था उसका भारतेन्दु ने भारत दुर्दशा नाटक में 'पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।' कहकर धन निष्कासन का बुनियादी तौर से पदाफाश किया है। दादाभाई नौरोजी ने भी १९०१ में अपनी पुस्तक Poverty and un British Rule in India में अंग्रेजी राज्य की शोषक नीतियों की विस्तार से उद्घाटित किया।

भारतेन्दु ने १६ जनवरी १८७४ ई. में 'कवि वचन सुधा' पत्रिका में भी लिखा था कि हे देशवासियों! तुम भी इस निद्रा से चौंको। इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो। ये विद्या कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा। नहीं तो अंत में यहां का सब धन विलायत चला जाएगा। तुम मुंह बाये रह जाओंगे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र यहाँ अंग्रेजी राज्य के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भारत का धन विलायत जाने पर हिन्दुस्तानियों को सावचेत कर रहे हैं तथा उन्हें हुनरमंद होने की सीख भी दे रहे हैं। भारत जननी नाटक में भी भारत की आर्थिक दुर्दशा का वर्णन किया गया है भारत जननी कहती है कि हाय मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भांति बराबर दीर्ध श्वांस ले रहे है। स्पष्ट है कि भारतेन्दु जैसे आरंभिक राष्ट्रवादी लेखक द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना करना राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य था। भारतेन्दु का अंधेर नगरी नाटक ब्रिटिश सामाज्य की अंधेर गर्दी की प्रतिकात्मक प्रस्तुति है लोक मे ंप्रचलित अंधेर नगरी चौपट राजा की कथा के आधार पर भारतेन्दु ने अपने नाटक के कथानक का ताना बाना बुनकर इसे जीवंत बना दिया है। अंधेर नगरी का राजा महारानी विक्टोरिया जो विदेश रहती था भारत की वास्तविक स्थिति से अपरिचित थी। अत: अंधेर नगरी राजा की नीति ही समझ का परिणाम है जिसमे ंमूल्यहीन और मूल्यवान, दोनों वस्तुओं का एक समान भाव है इस नगरी में सभी चीजों का भाव टके सेर होना मूल्य असंतुलन दर्शाता है कि किस प्रकार ब्रिटिश राज में राज्यतीय अर्थव्यवस्था चौपट हो गई थी। यहां महामूर्ख और विद्वान सभी बराबर सम्मान के अधिकारी है।

संत सेत सब एक से, जहां कपूर सपास।/ऐसे देश कुदेश में, कबहुं न कीजै बास॥/कोकिल बायस एक सम पंडित मूर्ख एक।

* प्राध्यापक हिन्दी, राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर (राजस्थान)

अंधेर नगरी में व्यंग्य के माध्यम से तद्युगीन व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया गया है। अंग्रेज राज्य में घासीराम के चने खाकर हामिक सब पर दुगना टैक्स लगाते हैं, पाचक वाले का चूरन खाकर अमले दूनी रिश्वत तुरंत पचा जाते है। पुलिस वाले चूरन खाकर सब कानून हजम कर जाते है और जब साहेब लोग चूरन खाते है तो सारा हिन्दुस्तान ही हजम कर जाते हैं। यही हिन्दुस्तान का मेवा फूट और वैर जिसका फायदा हमेंशा विदेशी शासन ने उठाया, टके सेर बिकता है। यहीं वेद, धर्म, कुल, मर्यादा, सच्चाई बड़ाई, सब टके सेर बिकती है। अंधेर नगरी की न्याय व्यवस्था में भी अंधेर है जहाँ व्यक्तियों को दोष के आधार पर नहीं अपितु दण्ड की सुविधा के आधार पर दंडित किया जाता है। स्पष्ट है कि घासीराम के चने जोर गरम, जात बेचने वाले ब्राह्मण, महन्त, गोबरधन दास और चूरनवाले के लटकों में निरक्षर जनता की समझ में आने वाली बात जन जागरण के लिए एक नये प्रकार का प्रयोग प्रतीत होती है। जनता के अंतर्मन में ब्रिटिश साम्राज्य रूपी अंधेर नगरी को उखाड़ फेकने का संकल्प एवं दृढ़ ईच्छा है । भारतेन्दु ने चौपट राजा को मुक्ति से फांसी पर चढ़ाकर जन सामान्य के आक्रोश को व्यक्त किया है। भारतेन्दु ने नील देवी नाटक में भारतीय नारी की दयनीय दशा के चित्रण के साथ उन्हें वीरत्व के गुणों से युक्त भी बताया गया है और उन्हें अंग्रेज स्त्रियों की भांति शिक्षित और प्रगतिशील बनाने की कामना भी की गई। किंतु भारतेन्दु की मूल चिंता यह है कि क्या भारत का स्वाधीनता सूर्य फिर न उदय होगा।

सब भांति दैव प्रतिकूल होई एहि नासा।/अब तजहुं वीर वर भारत की सब आसा॥

नील देवी नाटक राजा महाराज वर्ग से देशोद्धार की आशा करने में विफलता प्रकट करती है। लेकिन भारत का जो कुछ नाश हुआ, उसके कारण हमारे समाज में थे, इसके लिए देव को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। (डॉ. रामविलास शर्मा) इसी प्रकार वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति नाटक मूलत: धार्मिक आडम्बरों का यथार्थ चित्रण है। फिर भी तत्कालीन अंग्रेजी राज्य की खुशामद करने वाले चाटुकारो पर कटु व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु ने चित्रगुप्त से कहलवाया है कि महाराजा सरकार अंग्रेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्रानुसार उदारता करता है उसको स्टार आफ इंडिया की पदवी मिलती है। स्पष्ट है कि ब्रिटिश राज में योग्यता से नहीं बल्कि उनके प्रति वफादारी और चाटुकारिता से पदवी लिती है। भ्रष्ट शासन पर भी व्यंग्य किया गया है। जब पृथ्वी के मंत्री चित्रगुप्त को घूस का लालच देकर दंड पाने से बचना चाहते है तो चित्रगुप्त कहता है अरे दुष्ट यह भी क्या मृत्यु लोक की कचहरी है कि हमें घूस देता है और हम लोग क्या यहां के न्यायकर्ताओं की भांति क्या जंगल से पकड़कर लाए गए है कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। यहां तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेने वालों की भी होगी। विषस्य विषमोषधम नाटक मे मल्हार राव के दुराचार के कारण गद्दी से उतारे जाने का वर्णन है किंतु भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना कैसे हुई इस पर भण्डाचार्य कहता है धन्य है ईश्वर। सन् १५९९ ई. में जो लोग सौदागरी करने आये थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यो दूध की मक्खी बना देते है। भारतेन्दु को अपने युग और इतिहास की गहरी समझ है । वे जानते थे ब्रिटिश राज्य के भारतीय राजा महाराजा शतरंज के राजा की भांति नाम मात्र का होता था। इस नाटक के अंत में ब्रिटिश राज की प्रशंसा की गई है इसके बावजूद इसमें देशी राजाओं की असमर्थता और ब्रिटिश राज्य की स्वार्थपरता का जीवंत चित्रण किया गया है।

भारतेन्दु के नाटक साहित्य ने भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण वैभव और सांस्कृतिक मूल्यों का स्मरण कराकर राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विपिन चन्द्र (आ. भारत, पृ १३९) के अनुसार क्योंकि अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी और लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नही थे कि अनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य रहा है और इस प्रकार वे लोकतंत्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं है। अमर्त्यसेन ने भी अपनी पुस्तक The Argumentative India (हिन्दी अनुवाद भारतीय अर्थतंत्र इतिहास और संस्कृति) में इसी बात को केन्द्रित करते हुए लिखा है कि औपनिवेशी अनुभव ने न केवल भारतीयों के बौद्धिक आत्म विश्वास को पंगु कर दिया था, इससे उनकी वैज्ञानिक और तर्क संवाद की परम्पराओं को भी उचित सम्मान दे सकने की क्षमता कुंठित होकर रह गई। किंतु इसके बावजूद अनेक राष्टवादी नेता और लेखक जनता में आत्म विश्वास और आत्म सम्मान जगाने अथवा देश की संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए आगे आये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे ही लेखकों में थे। उन्हें निज भाषा, जातीय एकता, भारतीय संस्कृति, इतिहास और धर्म में अगाध निष्ठा थी। वे निज भाषा को सब उन्ननति का मूल मानते है। भारतेन्दु ने १८७३ ई. में लिखा था कि हिन्दी नई चाल में ढली और महज ३५ वर्ष की आयु में १८८५ ई. तक उन्होंने भाषा, साहित्य और समाज में एक व्यापक परिवर्तन कर दिया था। भारतेन्दु के ह्रदय में पराधीनता की पीड़ा थी, इसीलिए वे भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों का वित्रण कर भारतीय जनता में स्फूर्ति एवं चेतना का शंखनाद करते है तथा वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ भी व्यक्त करते है-

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।/सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥/जहुं भए शाक्य हरिश्चन्द्र नहुष ययाती।/जहुं राम युधिष्टर वासुदेव संर्याती॥/जहुं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।/तहुं रही मूढ़ता कलह अविद्या-राती॥/अब जहं देखहुं तहं दुखहि दुख दिखाई।/ हा हा। भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

लेखक स्पष्ट सकेट करता हैं कि हिन्दुस्तान में ही सर्वप्रथम सभ्यता का आविर्भाव हुआ, जहां ज्ञान विज्ञान दर्शन शौर्य, शक्ति और ऐश्वर्य से परिपूर्ण महानायकों, चक्रवर्ती राजाओं, ऋषिमुनिों की सुदीर्घ परम्परा रही है वहीं आज मूढ़ता, कलह, अविद्या, अंधकार, बेरोजगारी अकाल , महामारी, आलस्य, मदिरा, सत्यनाश आदि भारत की दुर्दशा करने के लिए लालायित है और भारतेन्दु का मूल मंतव्य भारतीय जनता को देश की दुर्दशा के प्रति सजग एवं सावचेत करना है। ब्रिटिश साम्राज्य का वास्तविक चरित्र वे स्पष्ट करते है-

भीतर भीतर सब रस चूसै।/हंसि हंसि के तन मन धन मूसै॥/ जाहिर बातन में अति तेज।/क्यों सखि साजन नहीं अंगरेज॥

शिक्षित बेरोजगारी-इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतेन्दु अपने नाट्य साहित्य में अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उसकी हिमायत में खड़े होने वालों की समूचि बुनियाद पर हमला करते हैं और भारत में व्याप्त सामाजिक और धार्मिक आडम्बरों और कुरीतियों के विरूद्ध जन जागरण का शंखवाद करते है। डॉ. राम विलास शर्मा ने एक सारगर्भित टिप्पणी करते हुए लिखा है कि भारतेन्दु की महता इस बात में है कि अंग्रेजी राज्य के सच्चे और कटु आलोचक थे। उनके नाटकों, कविताओं और निबंधों ने जनता को अंग्रेजी राज्य के अन्याय और शोषण के प्रति सचेत किया। भारतेन्दु ने अंग्रेजी राज्य की सभ्यता नेकनीयती और जनतंत्र का पर्दाफाश किया। (भा.ह.च. और हि. न. की समस्याएं)